पूर्ण पीठ

न्यायमूर्ति हरबंस सिंह सी.जे., आर. एस.नरूला, बाल राज तुली, पी. सी. जैन और सी.जी. सूरी

विद्या देवी, - याचिकाकर्ता

बनाम

फर्म मदन लाल प्रेम कुमार, - प्रतिवादी

1969 का सिविल पुनरीक्षण संख्या 92

29 सितंबर, 1970

पूर्वी पंजाब शहरी किराया प्रतिबंध अधिनियम (1949 का III) - धारा 13 और 15 - दंड प्रक्रिया संहिता (1898 का अधिनियम V) - धारा 195 (1) (बी), 476 और 479 ए - भारतीय दंड संहिता (1860 का XLV) - धारा 20 - किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण - क्या 'सिविल न्यायालय' - झूठी गवाही का अपराध किराया नियंत्रक या अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष की गई शिकायत - क्या ऐसे नियंत्रक या प्राधिकरण द्वारा दायर की जा सकती है।

यह कहा गया कि किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण पूर्वी पंजाब शहरी किराया प्रतिबंध अधिनियम, 1949 के तहत न्यायिक तरीके से उनके समक्ष की जाने वाली कार्यवाही का फैसला करते हैं। किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण की इस विशेषता से यह निम्नानुसार है कि वे न केवल न्यायालय हैं बल्कि भारतीय दंड संहिता की धारा 20 में परिभाषित 'न्यायिक न्यायालय' हैं। उन्हें अधिनियम द्वारा एक निश्चित निर्णय देने का अधिकार दिया गया है, जिसके खिलाफ अपील नहीं की जाती है, तो निर्णय अंतिम है और यदि इसके खिलाफ अपील की जाती है और अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है, तो यह अंतिम हो जाता है। चूंकि उनके समक्ष कार्यवाही सिविल प्रकृति की है, इसलिए उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (बी), 476 और 479-ए के प्रयोजनों के लिए आवश्यक रूप से सिविल कोर्ट ऑफ जस्टिस या केवल सिविल कोर्ट कहा जाना चाहिए। इसलिए किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण उनके समक्ष की गई झूठी गवाही के लिए शिकायतें दर्ज कर सकते हैं। **(पैरा 2 और 4)**

माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री मेहर सिंह द्वारा मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए *3* सितंबर, *1969* को एक खंडपीठ को मामला भेजा गया। माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री मेहर सिंह और माननीय न्यायमूर्ति श्री बाल राज तुली की खंडपीठ ने 9 अप्रैल, 1970 को मामले को पांच न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ को भेज दिया। इस मामले का अंतिम निर्णय 29 सितंबर, 1970 को माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री हरबंस सिंह, माननीय न्यायमूर्ति श्री आरएस नरूला, माननीय न्यायमूर्ति बाल राज तुली, माननीय न्यायमूर्ति पीसी जैन और माननीय न्यायमूर्ति सी जी सूरी की पूर्ण पीठ द्वारा किया गया था।

पूर्वी पंजाब शहरी किराया प्रतिबंध अधिनियम की धारा *15 (5)* के तहत श्री सरूप चंद गोयल, अपीलीय प्राधिकारी, हिसार के दिनांक 3 जनवरी, *1969* के आदेश में संशोधन के लिए याचिका, जिसमें श्री आरपी बजाज, नियंत्रक, मंडी डबवाली, तहसील सिरसा, जिला हिसार ने दिनांक 31 जुलाई, 1968 को आवेदन को खारिज कर दिया।

याचिकाकर्ता की ओर से वकील श्री जगन नाथ सेठ।

जे. एन. कौशल, महा अधिवक्ता (हरियाणा) और अशोक भान, एडवोकेट, एम.आर. शर्मा, डिप्टी एडवोकेट-जनरल (पंजाब); ओ. पी. होशियारपुरी, एडवोकेट जनरल (पंजाब) एच. एल. सिब्बल के साथ जवाहर लाल गुप्ता, आई एस तीवाना सहायक महाधिवक्ता(पंजाब) भी प्रतिवादी के लिए उपस्थित।

पूर्ण पीठ का फैसला

न्यायमूर्ति तुली। - याचिकाकर्ता श्रीमती विद्या देवी ने पूर्वी पंजाब शहरी किराया प्रतिबंध अधिनियम, 1949 की धारा 13 के तहत प्रतिवादी-फर्म मदन लाल प्रेम कुमार को किराए और गृह-कर का भुगतान न करने के आधार पर दुकान से बाहर निकालने के लिए एक आवेदन दायर किया। यह कहा गया था कि विचाराधीन दुकान को 1,050.00 रुपये के वार्षिक किराए पर छोड़ दिया गया था, कि प्रतिवादी-फर्म से 3,864.00 रुपये की राशि उस अवधि के लिए

बकाया थी। 9 दिसंबर, 1963 से 8 अगस्त, 1967 तक वर्ष 1963 से 1967 के लिए छप्पर के किराए के रूप में 225.00 रुपये की राशि बकाया थी और प्रतिवादी-फर्म ने गृह-कर का भुगतान भी नहीं किया था, हालांकि आवेदन में गृह-कर की राशि का उल्लेख नहीं किया गया था। विद्वान किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दुकान का वार्षिक किराया 800.00 रुपये था, कि किराया 31 मार्च, 1966 तक भुगतान किया गया था, और गृह-कर के भुगतान के लिए प्रतिवादी-फर्म की कोई देयता नहीं थी। यह भी माना गया कि 800.00 रुपये के किराए में छप्पर का किराया भी शामिल था। प्रतिवादी-फर्म ने मकान मालिक को इससे देय किराए की बकाया राशि दे दी। मकान मालिक की ओर से यह कहा गया था कि निविदा वैध नहीं थी, जबकि विद्वान किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण का निष्कर्ष यह था कि यह एक वैध निविदा थी क्योंकि किराए के बकाया के कारण देय राशि निविदा की गई राशि से अधिक नहीं थी। इन निष्कर्षों पर, याचिकाकर्ता के आवेदन को 31 जुलाई, 1968 को विद्वान किराया नियंत्रक द्वारा खारिज कर दिया गया था, और उस आदेश के खिलाफ उसकी अपील 3 जनवरी, 1969 को विद्वान अपीलीय प्राधिकरण द्वारा खारिज कर दी गई थी। अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष, प्रतिवादी-फर्म की ओर से एक अनुरोध किया गया था कि याचिकाकर्ता और उसके बेटे कृष्ण कुमार, जो मामले में एक गवाह के रूप में पेश हुए थे, पर प्रतिवादी-फर्म को नुकसान पहुंचाने और अपना अंत हासिल करने के लिए झूठा दावा करके झूठे सबूत देने के लिए मुकदमा चलाया जाना चाहिए। विद्वान अपीलीय प्राधिकारी ने निम्नानुसार टिप्पणी की :-

> उन्होंने कहा, 'यह अनुरोध अनुचित नहीं है। मकान मालकिन और उसके बेटे के बयानों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने न केवल एक फर्जी दावे को प्राथमिकता दी, बल्कि अदालत में गवाही देने में संकोच नहीं किया। उन्होंने 9 दिसम्बर, 1963 से 31 मार्च, 1966 तक किराए का दावा किया, जिसका भुगतान पहले ही किया जा चुका था। अदालत में भी उन्होंने इस राशि की प्राप्ति के तथ्य से इनकार किया। उन्होंने किराए की दर और छप्पर के लिए गृह-कर और किराए के अपने अधिकार के बारे में भी बात की।झूठी गवाही की बुराई के उन्मूलन के लिए और न्याय के हित में, यह समीचीन है कि ऐसे गवाहों पर झूठी गवाही के अपराध के लिए मुकदमा चलाया जाना चाहिए। कृष्ण कुमार और श्रीमती विद्या देवी को कारण बताओ नोटिस जारी किया जाए कि उनके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के तहत शिकायत क्यों न दर्ज की जाए।

याचिकाकर्ता ने विद्वान अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के खिलाफ अधिनियम की धारा 15 (5) के तहत वर्तमान याचिका दायर की। इसे हरबंस सिंह, जे. (उस समय मुख्य न्यायाधीश के रूप में) ने 5 फरवरी, 1969 को स्वीकार किया था। इस आदेश से पता चलता है कि पुनरीक्षण याचिका को इस आधार पर स्वीकार किया गया था कि अपीलीय प्राधिकरण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 476 के अर्थ के भीतर एक अदालत नहीं है, और इसलिए, नोटिस जारी नहीं कर सकता है। इसके बाद यह याचिका 3 सितंबर, 1969 को मेहर सिंह, सीजे के समक्ष सुनवाई के लिए आई, जब इसे एक बड़ी पीठ को भेज दिया गया। तत्पश्चात् इसे 9 अप्रैल, 1970 को मेहर सिंह, सी जे और मेरे समक्ष सुनवाई के लिए रखा गया और हमने इसे पांच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ को भेज दिया क्योंकि *मैसर्स पिटमैन शॉर्टहैंड अकादमी बनाम मैसर्स बी लीला राम एंड संस, आदि*[1] में तीन न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ के निर्णय की सत्यता थी। , संदेह किया गया था। इस प्रकार यह याचिका इस पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आई है।

(2) याचिकाकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया है कि अधिनियम के तहत किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण न तो न्यायालय हैं और न ही सिविल न्यायालय हैं क्योंकि उन शब्दों का उपयोग दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (एल) (बी), 476 और 479 ए में किया जाता है, और इसलिए, अपीलीय प्राधिकरण के पास याचिकाकर्ता और उसके बेटे के खिलाफ झूठी गवाही के लिए शिकायत दर्ज करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और न ही उन्हें नोटिस जारी करने का कोई अधिकार क्षेत्र है। कारण बताओ कारण बताओ कि क्यों न उनके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के तहत शिकायत दर्ज की जाए। 'न्यायालय' शब्द को भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अलावा

---

1 I.L.R. 1949 Pb. 606.

किसी अन्य अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन उस परिभाषा को दंड प्रक्रिया संहिता में नहीं पढ़ा जा सकता है। वह संहिता धारा **4 (1) (**एम**)** में 'न्यायिक कार्यवाही' को निम्नानुसार परिभाषित करती है: –

> "'न्यायिक कार्यवाही' में कोई भी कार्यवाही शामिल है जिसके दौरान साक्ष्य को शपथ पर कानूनी रूप से लिया जा सकता है;

संहिता की धारा **4** में यह प्रावधान किया गया है कि -

> "भारतीय दंड संहिता में यहां उपयोग किए गए और परिभाषित किए गए सभी शब्दों और अभिव्यक्तियों को, और इसके पहले परिभाषित नहीं किया गया है, उस संहिता द्वारा उनके लिए ज़िम्मेदार क्रमश अर्थ माना जाएगा।

भारतीय दंड संहिता धारा **19** और **20** में 'न्यायाधीश' और 'न्यायिक न्यायालय' को निम्नानुसार परिभाषित करती है: –

> 'न्यायाधीश' शब्द न केवल प्रत्येक व्यक्ति को दर्शाता है जिसे आधिकारिक तौर पर न्यायाधीश के रूप में नामित किया गया है, बल्कि हर उस व्यक्ति को भी जो कानून द्वारा किसी भी कानूनी कार्यवाही में, नागरिक या आपराधिक, एक निश्चित निर्णय, या एक निर्णय देने के लिए सशक्त है, जिसके खिलाफ अपील नहीं की जाती है, या एक निर्णय जो यदि किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पुष्टि की जाती है, तो निश्चित होगा, या एक निर्णय, यदि किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पुष्टि की जाती है, निश्चित होगा, या
>
> व्यक्तियों के निकाय में से कौन है, व्यक्तियों के किस निकाय को कानून द्वारा इस तरह का निर्णय देने का अधिकार है।
>
> 'न्यायिक न्यायालय' शब्द एक ऐसे न्यायाधीश को दर्शाता है जिसे कानून द्वारा अकेले न्यायिक रूप से कार्य करने का अधिकार है, या न्यायाधीशों का एक निकाय जिसे कानून द्वारा एक निकाय के रूप में न्यायिक रूप से कार्य करने का अधिकार है, जब ऐसा न्यायाधीश या न्यायाधीशों का निकाय न्यायिक रूप से कार्य कर रहा है।

इसलिए, हमें यह पता लगाना होगा कि क्या किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकारी ऊपर परिभाषित 'न्यायाधीश' शब्द के अंतर्गत आते हैं। यह आवश्यकता कि उसे कानून द्वारा एक निश्चित निर्णय या निर्णय देने का अधिकार दिया जाना चाहिए, जिसके खिलाफ यदि अपील नहीं की जाती है, तो निश्चित होगा या एक निर्णय, यदि किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा पुष्टि की जाती है, तो निश्चित होगा, किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण दोनों द्वारा पूरा किया जाता है। उन्हें अधिनियम द्वारा एक निश्चित निर्णय देने का अधिकार दिया गया है, जिसके खिलाफ अपील नहीं की जाती है, तो निर्णय अंतिम है और यदि इसके खिलाफ अपील की जाती है और अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है, तो यह अंतिम हो जाता है। तब यह देखा जाना चाहिए कि किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही कानूनी है या नहीं। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि कार्यवाही कानूनी और न्यायिक है क्योंकि किराया नियंत्रक साक्ष्य लेने के लिए अधिकृत है और यदि उसे इसकी आवश्यकता महसूस होती है तो अपीलीय प्राधिकरण भी है। अन्यथा, अपीलीय प्राधिकारी किराया नियंत्रक द्वारा तैयार किए गए रिकॉर्ड पर उसके समक्ष अपील का निर्णय ले सकता है। किराया नियंत्रक के समक्ष आवेदनों की विषय-वस्तु मकान मालिक और किरायेदार के बीच विवाद और चिंताएं हैं -

(1) उचित किराए का निर्धारण **(**धारा **4);**

(2) ऐसे मामले जिनमें उचित किराए में वृद्धि स्वीकार्य है **(**धारा **5);**

(3) किरायेदार द्वारा संलग्न सुविधाओं में हस्तक्षेप **(**धारा **10);**

(4) नियंत्रक की लिखित अनुमति के बिना एक आवासीय भवन को गैर-आवासीय भवन में परिवर्तित करना **(**धारा **11);**

(5) यदि मकान मालिक आवश्यक मरम्मत करने में विफल रहता है तो नियंत्रक द्वारा किरायेदार को दी जाने वाली अनुमति **(**धारा **12);** और

(6) किरायेदारों की बेदखली **(**धारा **13)**

अधिनियम की धारा **14** में कतिपय निर्णयों को पुनर्निर्णय के रूप में संचालित करने का प्रावधान है;धारा **15** अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील करने और उच्च न्यायालय में संशोधन करने का प्रावधान करती है; धारा **16** में यह प्रावधान है कि एक अपीलीय प्राधिकारी या नियंत्रक के पास गवाहों को तलब करने और उनकी उपस्थिति को लागू करने और साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करने की वही शक्ति होगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायालय में निहित है; धारा **17**-ए उच्च न्यायालय को शक्ति प्रदान करती है। न्यायालय किसी अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष लंबित किसी कार्यवाही को किसी अन्य अपीलीय प्राधिकारी को हस्तांतरित कर सकता है और यह अपीलीय प्राधिकारी को अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी नियंत्रक के समक्ष लंबित किसी कार्यवाही को किसी अन्य नियंत्रक को हस्तांतरित करने का अधिकार देता है और धारा **18** में मकान मालिक और किरायेदार को किसी भी भवन या किराए की भूमि के संबंध में ऐसे विवरण प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है जो नियंत्रक या उसके द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति को निर्धारित किया जा सकता है। धारा **19** दंड का प्रावधान करती है जबकि धारा **20** राज्य सरकार को अधिनियम के सभी या किन्हीं प्रावधानों को पूरा करने के प्रयोजनों के लिए नियम बनाने के लिए अधिकृत करती है।

(3) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा **9** के तहत, सिविल न्यायालयों के पास सिविल प्रकृति के सभी मुकदमों की सुनवाई करने का अधिकार है, सिवाय उन मुकदमों के जिनमें से संज्ञान या तो स्पष्ट रूप से या निहित रूप से प्रतिबंधित है। यह सर्वविदित है कि किराया अधिनियम अधिनियमित किए जाने से पहले किरायेदारों को निकालने के मुकदमे सिविल न्यायालयों द्वारा संज्ञेय थे और यह सिविल न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र है जिसका उपयोग किराया नियंत्रकों और अपीलीय प्राधिकरणों द्वारा किया जाता है। किराया नियंत्रक के समक्ष सभी कार्यवाहियां सिविल प्रकृति की होती हैं और उन मामलों पर निर्णय लेने की शक्ति सिविल न्यायालयों की होती लेकिन किराया अधिनियमों के लिए जिन्होंने अधिनियम के तहत किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण जैसे विशेष न्यायाधिकरणों को यह अधिकार क्षेत्र प्रदान किया है। ऐसे विभिन्न अधिनियम हैं जिनके अंतर्गत सिविल न्यायालयों को शक्तियां प्रदान की गई हैं जिनके समक्ष वाद दायर किए गए हैं और पार्टियों के बीच अनुबंधों की उपेक्षा करते हैं, उदाहरण के लिए, ऋण अधिनियम और पंजाब ऋणग्रस्तता राहत अधिनियम, जिसके तहत अधिनियम में निर्धारित दर से अधिक दर पर ब्याज को अस्वीकार करना होगा। इसी प्रकार, इस अधिनियम के अंतर्गत किराया नियंत्रक में निहित सभी शक्तियां सिविल न्यायालयों को दी जा सकती हैं क्योंकि वे सभी मामले सिविल प्रकृति के हैं। इस कारण से, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही कानूनी और नागरिक प्रकृति की है।

(4) *वीरिंदर कुमार सत्यवादी बनाम पंजाब राज्य*[2], में उच्चतम न्यायालय के लॉर्डशिप ने कहा है कि अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले न्यायाधिकरण से अलग न्यायालय की अनिवार्य विशेषताएं निम्नानुसार हैं -

2 A.I.R. 1956 S.C. 15

"यह व्यापक रूप से कहा जा सकता है कि एक अदालत को अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरण से अलग करने वाली बात यह है कि उस पर न्यायिक तरीके से विवादों का फैसला करने और एक निश्चित निर्णय में पार्टियों के अधिकारों की घोषणा करने का कर्तव्य है। न्यायिक तरीके से निर्णय लेने के लिए यह शामिल है कि पार्टियां अपने दावे के समर्थन में सुनवाई के अधिकार के मामले के रूप में हकदार हैं और इसके प्रमाण में साक्ष्य जोड़ना चाहते हैं।

और यह प्राधिकरण की ओर से एक दायित्व भी आयात करता है, जो पेश किए गए सबूतों पर विचार करने और कानून के अनुसार मामले का फैसला करता है। इसलिए, जब यह प्रश्न उठता है कि क्या किसी अधिनियम द्वारा सृजित प्राधिकारी एक अर्ध-न्यायिक अधिकरण से अलग न्यायालय है, तो यह निर्णय लिया जाना चाहिए कि क्या अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए इसमें न्यायालय के सभी गुण हैं।

मैंने पहले ही ऊपर उल्लेख किया है कि अधिनियम की धारा **16** किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकारी को गवाहों को तलब करने और उनकी उपस्थिति को लागू करने और सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत और अधिनियम की विभिन्न धाराओं के तहत सिविल कोर्ट की तरह साक्ष्य पेश करने के लिए मजबूर करने का अधिकार देती है। पार्टियों को उस सबूत को पेश करने और अपने दावों के समर्थन में सुने जाने का अधिकार है। इसी तरह, अपीलीय प्राधिकरण को किराया नियंत्रक से मामले के रिकॉर्ड भेजने और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के बाद उसके समक्ष वरीयता प्राप्त अपील पर फैसला करना होगा- इसे मामले में आगे की जांच करने की शक्ति भी दी गई है, जिसका अर्थ है, निश्चित रूप से, पार्टियों की उपस्थिति में की गई जांच, न कि उनकी पीठ पर। इस प्रकार पक्षकारों को किराया नियंत्रक के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही में सुनवाई करने का अधिकार है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकारी उनके समक्ष की जाने वाली कार्यवाही का न्यायिक तरीके से निर्णय लेते हैं। किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण की इस विशेषता से यह निम्नानुसार है कि वे न केवल न्यायालय हैं बल्कि भारतीय दंड संहिता की धारा **20** में परिभाषित 'न्याय न्यायालय' हैं। चूंकि उनके समक्ष कार्यवाही सिविल प्रकृति की है, इसलिए उन्हें आवश्यक रूप से धारा **195** के प्रयोजनों के लिए न्याय के सिविल न्यायालय या केवल सिविल न्यायालय कहा जाना चाहिए; **(l) (ख)**, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **476** और **479-क**।

(5) इस स्तर पर दंड प्रक्रिया संहिता की उप-धारा **(2)** धारा **195** को संदर्भित करना भी उपयोगी है जो निम्नानुसार है: –

"उप-धारा **(1)** के खंड (बी) और (सी) में, 'कोर्ट' शब्द में एक नागरिक, राजस्व या आपराधिक न्यायालय शामिल है, लेकिन भारतीय पंजीकरण अधिनियम, **1877** के तहत एक रजिस्ट्रार या उप-रजिस्ट्रार शामिल नहीं है।

इस उप-धारा की भाषा से यह स्पष्ट है कि लेकिन स्पष्ट रूप से किए गए बहिष्करण के लिए, भारतीय पंजीकरण अधिनियम के तहत एक रजिस्ट्रार या उप-रजिस्ट्रार को वैध रूप से 'न्यायालय' शब्द में शामिल माना जाएगा। इस उप-धारा में स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गए विधायी इरादे को ध्यान में रखते हुए, उक्त संहिता की धारा **195 (2)** में दी गई 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा के भीतर किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण को शामिल करने का हर कारण है क्योंकि इन न्यायाधिकरणों में भारतीय पंजीकरण अधिनियम के तहत रजिस्ट्रार या उप-रजिस्ट्रार की तुलना में अदालत का अधिक जाल है।

(6) ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, मैं मानता हूं कि अपीलीय प्राधिकरण को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा **479-ए** के तहत याचिकाकर्ता और उसके बेटे को कारण बताओ नोटिस जारी करने का अधिकार था कि उनके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा **193** के तहत शिकायत क्यों न दर्ज की जाए और धारा **195** के तहत शिकायत दर्ज की जाए: **(l) (ख)** के तहत यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उनके विरुद्ध ऐसी शिकायत दर्ज करना

समीचीन और न्याय के हित में है। धारा **195** के तहत; **(l) (ख)** के तहत शिकायत उस न्यायालय द्वारा दायर की जा सकती है जिसमें या किसी ऐसी कार्यवाही के संबंध में जिसके समक्ष झूठी गवाही देने का अपराध उस न्यायालय के लिए किया गया था जिसके अधीन वह न्यायालय है। अधीनता का अर्थ न्यायिक अधीनता है और यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि किराया नियंत्रक इस तथ्य के मद्देनजर अपीलीय प्राधिकारी के अधीनस्थ नहीं है कि किराया नियंत्रक के आदेशों से अपील अधिनियम की धारा **15 (1) (बी)** के तहत अपीलीय प्राधिकरण के अधीन है।

(7) इस मामले को पांच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ को भेजे जाने का कारण यह था कि इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ ने मैसर्स के मामले में निर्णय लिया था। पिटमैन की शॉर्टहैंड अकादमी बनाम मैसर्स बी। लीला राम एंड संस आदि *(सुप्रा) (***1***)*, कि न तो किराया नियंत्रक और न ही अपीलीय प्राधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा **115** के अर्थ के भीतर उच्च न्यायालय के अधीनस्थ कानून की अदालत है। उस निर्णय में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है क्योंकि किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकारी सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय नहीं हैं क्योंकि अधिनियम में प्रदान किए गए मामलों पर निर्णय लेने के लिए सिविल न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से निषिद्ध है। उन निषिद्ध मामलों से निपटने वाले किसी भी न्यायालय को सिविल न्यायालय नहीं कहा जा सकता है, लेकिन उस निर्णय का अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण धारा **195 (एल)** के प्रयोजनों के लिए न्यायालय या सिविल न्यायालय नहीं हैं। **(ख),** दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **476** और **479**-क।

(8) अब मैं हमारे समक्ष उद्धृत कुछ अन्य निर्णयों पर विचार करना जारी रखता हूं जिन्हें मैं प्रासंगिक मानता हूं। *लालजी हरिदास बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य*[3] मामलों में तीन से दो के बहुमत से यह निर्णय लिया गया था कि आयकर अधिनियम, **1922** की धारा **37** के अंतर्गत आयकर अधिकारी द्वारा की गई कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही है और उन कार्यवाहियों को करते समय आयकर अधिकारी को न्यायालय माना जाना चाहिए ताकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **195 (1) (बी)** द्वारा प्रदत्त संरक्षण उस व्यक्ति को उपलब्ध कराया जाए जो अपराध करता है। आयकर अधिकारी के समक्ष उन कार्यवाहियों के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा **193** के तहत अपराध, जिसके परिणामस्वरूप उस अधिकारी द्वारा शिकायत उस अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट के लिए एक शर्त मिसाल है। यह निर्णय स्पष्ट रूप से उस दृष्टिकोण का समर्थन करता है जो मैंने किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण के संबंध में ऊपर लिया है।

(9) सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप का एक और निर्णय *ठाकुर जुगल किशोर सिंह बनाम सीतामढ़ी सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड और एक अन्य*[4] इस बिंदु पर काफी शिक्षाप्रद है। उस मामले में, निर्धारण के लिए प्रश्न यह था कि क्या बिहार और उड़ीसा सहकारी समिति अधिनियम के तहत कार्यरत सहायक रजिस्ट्रार, न्यायालय की अवमानना अधिनियम की धारा **3** के प्रयोजनों के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है और उनके लॉर्डशिप द्वारा दिया गया उत्तर सकारात्मक था। इस निष्कर्ष के समर्थन में यह कहा गया था - !

> "धारा **48** के तहत शक्तियों का प्रयोग करने वाले एक रजिस्ट्रार को उन कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए माना जाना चाहिए जो अन्यथा देश के सामान्य सिविल और राजस्व न्यायालयों पर आते। रजिस्ट्रार के पास केवल एक न्यायालय की शक्तियां नहीं हैं, बल्कि कई मामलों में उसे वही शक्तियां दी जाती हैं जो नागरिक प्रक्रिया संहिता द्वारा देश के सामान्य सिविल न्यायालयों को दी जाती हैं, जिसमें शपथ पर गवाहों को बुलाने और जांच करने की शक्ति, दस्तावेजों के निरीक्षण का आदेश देने की शक्ति, मुद्दों को तैयार करने के बाद पार्टियों को सुनने की शक्ति शामिल है। अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करना और यहां तक कि नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा **151** में उल्लिखित न्यायालयों के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करना। ऐसे मामले में यह मानने में कोई कठिनाई नहीं है कि अधिनियम की धारा **48** के तहत

3 A.I.R. 1964 S.C. 1154.
4 A.I.R. 1967 S.C. 1494.

संदर्भित विवाद पर निर्णय लेने में, रजिस्ट्रार सभी इरादों और उद्देश्यों के लिए है, एक अदालत उसी तरह से अपने कार्यों और कर्तव्यों का निर्वहन करती है जैसा कि कानून की अदालत से अपेक्षा की जाती है।

रिपोर्ट के पैरा **20** में आगे कहा गया है -

"सहायक रजिस्ट्रार के पास इस मामले में एक रजिस्ट्रार की सभी शक्तियां थीं, जैसा कि प्रतिनिधिमंडल में उल्लेख किया गया था और वह इसे उसी तरह से निपटाने के लिए सक्षम था जैसा कि रजिस्ट्रार ने किया होगा।

अंत में, इसलिए, हमें यह कहना चाहिए कि सहायक रजिस्ट्रार बैंक और अपीलकर्ता और जगन्नाथ झा के बीच विवाद का फैसला करने में एक अदालत के रूप में काम कर रहा था।

लॉर्डशिप की ये टिप्पणियां अधिनियम के तहत किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण पर उपयुक्त रूप से लागू होती हैं। इसलिए, मैं मानता हूं कि अधिनियम के तहत किराया नियंत्रक और अपीलीय प्राधिकरण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **195 (1) (**बी**), 476** और **479-**ए के प्रयोजनों के लिए सिविल कोर्ट हैं और अपीलीय प्राधिकरण अपील का निपटान करते समय याचिकाकर्ता और उसके बेटे को नोटिस जारी करने के अपने अधिकार क्षेत्र में था और उस आदेश में कोई गलती नहीं पाई जा सकती है।

(10) मैं यह नहीं समझ पाया हूं कि याचिकाकर्ता ने यह विवाद क्यों उठाया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **195 (**एल**) (**बी**), 476** और **479-**ए अदालतों के समक्ष पेश होने वाले पक्षों और गवाहों को सुरक्षा प्रदान करती है कि अदालत की शिकायत के अलावा उन पर झूठी गवाही के लिए मुकदमा नहीं चलाया जाएगा और इससे पहले कि अदालत झूठी गवाही के लिए शिकायत दायर करे, उसे शिकायत दर्ज करने के खिलाफ अपराधी को कारण बताने के लिए नोटिस देना होगा और यह अदालत के पास भी आना होगा। निष्कर्ष यह है कि शिकायत दर्ज करना समीचीन और न्याय के हित में है। यदि यह संरक्षण छीन लिया जाता है, तो कोई भी व्यक्ति अपराधी के खिलाफ शिकायत दायर कर सकता है, जिसका अर्थ होगा कि उसे विशेष रूप से विरोधियों के हाथों बहुत परेशान किया जाएगा, जो ऐसे मामलों में बहुत प्रतिशोधी होने की संभावना रखते हैं। अदालत, अपराधी को सुनने के बाद, एक राय बनाती है कि शिकायत दर्ज करना उचित है या समीचीन है या नहीं। कई मामलों में यह एक राय बना सकता है कि शिकायत दर्ज करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा और इस प्रकार नोटिस का निर्वहन होगा और अपराधी को आपराधिक न्यायालय में मुकदमे से गुजरने की परेशानी से बचाया जाएगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **476** बी में एक और सुरक्षा प्रदान की गई है जहां तक कि एक अपील अभियोजन का आदेश देने वाले न्यायालय के आदेश के खिलाफ है। हमारे ध्यान में लाए गए मामलों में, उक्त संहिता की धारा **195 (**एल**) (**बी**)** के संरक्षण का दावा इस आधार पर किया गया था कि जिन अधिकारियों के सामने झूठी गवाही का अपराध कथित तौर पर किया गया था, वे अदालतें थीं और मजिस्ट्रेट उस अधिकारी द्वारा लिखित शिकायत के बिना उस अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता था। उन मामलों में यह माना गया था कि उक्त अधिकारी न्यायालय नहीं थे और इसलिए, धारा **195 (**एल**) (**बी**)** के तहत संरक्षण उपलब्ध नहीं था।

(11) विरिंदर कुमार सत्यवादी का मामला *(*सुप्रा**) (2)** एक निर्वाचन अधिकारी से संबंधित था और यह माना गया था कि निर्वाचन अधिकारी एक अदालत नहीं है, हालांकि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा **36** के तहत कार्य करते समय उसका कार्य चरित्र में न्यायिक है, लेकिन उसे इसका निर्वहन करने में न्यायिक रूप से कार्य नहीं करना है। *ब्रजनंदन सिन्हा बनाम ज्योति नारायण*[5] मामले में उनके लॉर्डशिप ने कहा कि लोक सेवक **(**जांच**)** अधिनियम **(1850** का **37)** के तहत नियुक्त आयुक्त अदालत नहीं था। *जगन्नाथ प्रसाद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*[6] ने यह व्यवस्था दी कि बिक्री कर अधिकारी न्यायालय नहीं है और भारतीय दंड संहिता की धारा **471** के

---

5 A.I.R. 1956 S.C. 66

6 A.I.R. 1963 S.C. 416

तहत अपराध के संबंध में, उसके समक्ष कार्यवाही में किए गए अपराध के संबंध में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **195** के तहत उसके द्वारा शिकायत आवश्यक नहीं थी।

(12) *चपराला कृष्ण ब्राह्मण बनाम गुदुरु गोवर्धनैया*[7] ने कहा कि आयकर अधिनियम **1922** की धारा **37** के तहत कार्य करते समय एक आयकर अधिकारी अदालत नहीं है। यह माना जाना चाहिए कि लालजी हरिदास के मामले *(*सुप्रा*)* में सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप के फैसले से इस फैसले को खारिज कर दिया गया है।

(13) *सुधींद्र कुमार देब बनाम गोपिका रंजन दत्ता*[8] ने कहा कि औद्योगिक न्यायाधिकरण एक न्यायालय नहीं है, हालांकि भारतीय दंड संहिता की धारा **193** के प्रयोजनों के लिए, ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही को न्यायिक माना जाएगा। विद्वान न्यायाधीशों ने *भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली बनाम भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली*[9] के कर्मचारी मामले में उच्चतम न्यायालय के अपने लॉर्डशिप के एक निर्णय पर भरोसा किया। कारण स्पष्ट प्रतीत होता है क्योंकि एक औद्योगिक अधिकरण एक निश्चित निर्णय नहीं देता है बल्कि एक निर्णय देता है और वह निर्णय केवल तभी प्रभावी होता है जब राज्य सरकार इसे प्रकाशित करती है। यदि राज्य सरकार इसे प्रकाशित करने का विकल्प नहीं चुनती है, तो यह बिल्कुल भी लागू नहीं होता है, जिससे यह पता चलता है कि औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय में कोई ऑपरेटिव बल नहीं है और इसे एक निश्चित निर्णय के बराबर नहीं कहा जा सकता है।

(14) यद्यपि संशोधन के आधार पर अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को गुण-दोष के आधार पर भी चुनौती दी गई है, लेकिन किसी अन्य बिंदु पर हमें कोई तर्क नहीं दिया गया था और न ही विद्वान मुख्य न्यायाधीश या डिवीजन बेंच के समक्ष किसी अन्य बिंदु पर कोई तर्क दिया गया था, जिसने इसे पूर्ण पीठ को निर्णय के लिए भेजा था।

(15) ऊपर दिए गए कारणों के लिए, इस संशोधन याचिका में कोई दम नहीं है जिसे खारिज कर दिया गया है और विद्वान अपीलीय प्राधिकरण के आदेश की पुष्टि की गई है। हालांकि, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं है क्योंकि कानून का बिंदु कठिनाई से मुक्त नहीं था,

मुख्य न्यायाधिपति हरबंस सिंह,- सहमत ।

न्यायमूर्ति आर.एस. नरूला, -- सहमत।

न्यायमूर्ति पी आर एम चंद,- सहमत।

न्यायमूर्ति जी. जी. सूरी, - सहमत।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के समिति उपयोग कि लिए है ताकि यह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। सभी व्यावहारिक और आपराधिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त होगा।

हिमांशु आर्य
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
हरियाणा

---

7 A.I.R. 1954 Mad. 822.
8 A.I.R. 1960 Assam 55.
9 A.I.R. 1950 S.C. 18